टीका है न? **टीका : यह, परमावश्यक अधिकार के उपसंहार का कथन है।** थोड़ा कल चला था। यह परमावश्यक अधिकार है। आत्मा को अवश्य क्या करना और क्या अवश्य नहीं है, इसकी बात है। जरूरी-आवश्यक यह है कि यह आत्मा चैतन्यस्वरूप आनन्दमूर्ति है, इसकी दृष्टि करके अन्तर में स्थिर रहना, यह करना है। यह आवश्यक - अवश्य करनेयोग्य यह है और इससे मुक्ति होती है। बाकी किसी क्रियाकाण्ड से, बाहर की क्रिया कोई सामायिक और प्रौषध, पूजा और भक्ति और यात्रा से मुक्ति नहीं होती, वह तो बन्ध का कारण है। यह कहते हैं, देखो।

स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान... स्वात्माश्रित। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप शरीर और राग से भिन्न है, उसका आश्रय। स्वात्माश्रित। महासिद्धान्त है। जो भगवान आत्मा परम आनन्द और परम शान्ति का कन्द, रसकन्द है, उसके आश्रय से निश्चयधर्मध्यान होता है। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप पुण्य और पाप के भाव से रहित, दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा, और काम, आदि यह सब राग है। प्रभु राग से रहित है। उस रागरहित निश्चय जो धर्मध्यान, वह स्वात्माश्रित होता है। आहाहा! ऐसा सुनना कठिन पड़ता है। समय नहीं निकालता। कमाना, खाना और मरना। हो गया, जाओ। मरकर चार गति के अवतार में। आहाहा!

करनेयोग्य होवे तो यह करने योग्य है। **स्वात्माश्रित...** प्रभु चैतन्य ज्ञान-आनन्दस्वरूप है, उसके आश्रय से निश्चय सत्य धर्मध्यान, सच्चा शुक्लध्यान (होता है)। अन्तर का

स्वरूप, वह स्वात्मा के आश्रय से उत्पन्न होनेवाली जो परिणति, निर्मल वीतरागदशा, उससे विरुद्ध **बाह्य-आवश्यकादि क्रिया से प्रतिपक्ष...** बाह्य क्रिया जो सामायिक, चौविसंथो, वन्दन और प्रतिक्रमण वह शुभविकल्प राग है, वह तो बन्ध का कारण है। **बाह्य-आवश्यकादि क्रिया से प्रतिपक्ष...** बाह्य आवश्यक से विरुद्ध। आहाहा! ऐसा काम है। है? बाह्य आवश्यक। बाह्य सामायिक, व्यवहार सामायिक, चौबीस भगवान की स्तुति, वन्दन, पूजा और भक्ति यह सब बाह्य आवश्यक है। वह तो राग है, राग। उसमें कोई धर्म नहीं है। आहाहा!

यह **बाह्य-आवश्यकादि...** आवश्यकादि लिया है। धर्म, पूजा, भक्ति, वन्दन, नामस्मरण, पंच परमेष्ठी का स्मरण, यह सब बाह्य क्रियाकाण्ड है, यह कोई धर्म नहीं है। आहाहा! यह **बाह्य-आवश्यकादि...** है न? आवश्यक और इसके अतिरिक्त दूसरे क्रियाकाण्ड। आहाहा! दो शब्द हैं। आवश्यकादि बाह्य क्रियाकाण्ड से प्रतिपक्ष उस भगवान आत्मा का आत्मधर्म। आहाहा!

शुद्धनिश्चय-परमावश्यक—बाह्य क्रियाकाण्ड से भिन्न। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से भिन्न। यह क्रियाकाण्ड तो सब राग है। राग है, वह अधर्म है। आहाहा! उससे विरुद्ध धर्म है। गजब है न! सुनना कठिन पड़े। दुकान और धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती पूरे दिन पाप के कारण फुरसत नहीं मिलती। उसमें फिर ऐसी बात। व्यवहार छह आवश्यक आदि। अर्थात् व्यवहार छह आवश्यक - सामायिक, चौविसंथो, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग। इसके अतिरिक्त व्यवहार के दूसरे क्रियाकाण्ड। पंच महाव्रत की, पाँच समिति, गुप्ति आदि क्रिया, बारह व्रत की क्रिया, इन सब क्रिया से विरुद्ध धर्मध्यान है। आहाहा! इससे विरुद्ध शुद्धनिश्चय... अब यह लोग कहते हैं कि इससे (व्यवहार से) होता है। यहाँ कहते हैं कि यह तो उससे विरुद्ध है, प्रतिपक्ष है। आहाहा! एक ही आवश्यक नहीं लिया। आवश्यकादि जितनी बाह्य क्रिया की जाए, (वह सब ली है)। आहाहा! जितना शुभविकल्प, शुभराग, पुण्यभाव, शुभभाव है, वह सब बाह्य क्रियाकाण्ड है, उससे प्रतिपक्ष निश्चयधर्मध्यान है। आहाहा!

मुमुक्षु : पूजा में तो ऐसा आया कि षट् आवश्यक जो साधे, वह रत्नत्रय आराधे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह निश्चय-निश्चय आवश्यक।

मुमुक्षु : पूजा में तो व्यवहार होता है या निश्चय होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार कहा था, वह व्यवहार नहीं, वह धर्मध्यान नहीं। आहाहा! ऐसा तो अनन्त बार किया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' आत्मज्ञान। आत्मा क्या चीज़ है ? अन्दर रत्न भरे हैं। अनमोल! अन्दर आनन्दादि अनन्त-अनन्त अनमोल रत्न भरे हैं। ऐसा भगवान आत्मा का भान—ज्ञान और अनुभव बिना आवश्यकादि कोई भी क्रिया... आहाहा! मन्दिर बनाना और करोड़ों रुपये खर्च करना, दस-दस लाख का खर्च करके गजरथ निकालना, गजरथ, शोभायात्रा निकालना, शरीर से ब्रह्मचर्य पालना। शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, स्त्री का विषय न लेना, यह भी शुभभाव है। बालब्रह्मचारीपना भी शुभभाव है। वह धर्म नहीं है। आहाहा! क्योंकि वह तो शरीर की क्रिया रोकी है। वह शरीर की क्रिया तो शरीर के कारण से रुकी है, बाह्य विषय न लेने से। वह कहीं आत्मधर्म नहीं है। आहाहा! व्यवहार ब्रह्मचर्य शरीर की क्रिया होती है, वह न करे, वह धर्म नहीं है। आवश्यकादि है न ? आहाहा! बाहर की दया पाले, दूसरे प्राणी की हिंसा न करे, वह सब राग है। आत्मधर्म बिल्कुल नहीं। जन्म-मरणरहित होना, उस चीज़ से रहित है। आहाहा!

शुद्धनिश्चय-परमावश्यक—शुद्धनिश्चय, सच्चा निश्चय परम आवश्यक। खास, जरूर, करनेयोग्य है वह। **साक्षात् अपुनर्भवरूपी (मुक्तिरूपी)...** मोक्षसिद्धिरूपी स्त्री अर्थात् मुक्ति की परिणति। सिद्धदशा की परिणतिरूपी **स्त्री के अनंग (अशरीरी) सुख का कारण—**है। आहाहा! यह निश्चय आवश्यकादि जो हैं, स्वात्माश्रित जो हैं, वह मुक्तिरूपी स्त्री को प्राप्त करने का साधन है। आहाहा! है ? **(अशरीरी) सुख का कारण—** है। बाकी सब क्रियाकाण्ड में तो शुभभाव होवे तो शरीर साधन माने बाहर से। यह धूल मिले। धूल अर्थात् पैसा। धूल है न ? धूल है न ? यह मिट्टी है।

मुमुक्षु : लोग पैसे को ऐसा कहते हैं कि हाथ का मैल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाथ का मैल ही है। हाथ का मैल वह अलग चीज़, यह अलग चीज़। हाथ का मैल अलग चीज़, पैसा अलग चीज़। मिट्टी-धूल है। आहाहा! पैसे से कुछ धर्म होता है या पाँच-पच्चीस लाख खर्च करके मन्दिर बनाना, रथ निकालना, भगवान का माहात्म्य बढ़ावे... आहाहा! महोत्सव मनावे, महोत्सव। दो-पाँच लाख खर्च

करके भगवान का महोत्सव मनाना, यह सब क्रियाकाण्ड से मुक्ति नहीं मिलती। आहाहा! यह सब परम आवश्यक से विरुद्ध है।

इससे **साक्षात् अपुनर्भवरूपी...** निश्चय जो आवश्यक है। जो व्यवहार से प्रतिपक्ष है, वह साक्षात् भव नहीं मिलता, ऐसी आत्मा की शुद्ध परिणतिरूपी स्त्री... अशुद्ध परिणतिरूपी तो व्यभिचार है। पुण्य और पाप का भाव, दया, दान आदि शुभभाव, वह भी व्यभिचार है। आहाहा! अव्यभिचार - ब्रह्मचर्य इसे कहते हैं, ब्रह्म अर्थात् आनन्दस्वरूप प्रभु में तैरना, आनन्द में रमना, वह बाह्य आवश्यक से भिन्न है। आहाहा! इसमें कहाँ निवृत्ति? जिन्दगी में निवृत्ति नहीं मिलती। यह वस्तु ऐसी...

साक्षात् अपुनर्भवरूपी (मुक्तिरूपी) स्त्री के अनंग (अशरीरी) सुख का कारण—उसे करके,.... देखो! उसे करना कहा। **उसे करके,...** आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु अतीन्द्रिय सुख का सागर है, अतीन्द्रिय ज्ञान का समुद्र है, उसमें लीन होना, उसका आश्रय करके उसमें लीन होना। **उसे करके, सर्व पुराण पुरुष—** अनन्त काल में जो पुरुष हो गये। पुराने काल में पुराने पुरुष महावीर आदि, रामचन्द्र आदि सब इस आत्मा की क्रिया करके मोक्ष में पधारे हैं। बाह्य क्रिया से कोई मोक्ष पधारे, ऐसा तीन काल में, तीन लोक में नहीं है। आहाहा! अनन्त तीर्थंकर, अनन्त बलदेव और अनन्त-अनन्त रामचन्द्रजी जैसे पुरुषोत्तम पुरुष, वे यह अन्दर की निश्चय आवश्यक क्रिया, बाह्य व्यवहार आवश्यक क्रिया से विरुद्ध, **उसे करके, सर्व पुराण पुरुष—** ये सब पुराने पुरुष। आहाहा! तू कहता है कि नया निकला? और फिर वह कुछ नया करने लगा? सर्व पुराण पुरुषों ने तो यह किया है। आहाहा!

जैनधर्म में वीतरागता अन्दर आत्मा-स्वआत्मा के आश्रय से ही प्रगट होती है। वे महा पुराण पुरुष यह कर गये हैं। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त काल में जो कोई पुराण पुराने.. पुराने... पुराने... पुरुष (हुए), वे सब यह कर गये हैं। आहाहा! कितने ही ऐसा कहते हैं कि हमारे बाप-दादा का यह धर्म है। तेरे बाप-दादा का धर्म। परन्तु धर्म है या अधर्म है? आहाहा! यह तो कहते हैं, तेरे बाप-दादा जो पुराण पुरुष इस क्रिया से मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। आहाहा! अनन्त भव हो गये। अनन्त माता-पिता, अनन्त पिता मोक्ष पधारे। पुराण पुरुष। आहाहा!

सर्व पुराण पुरुष—कि जिनमें से तीर्थंकर-... आहाहा! वे भी यह क्रिया करके मोक्ष में पधारे। यह क्रिया। बाहर की क्रिया नहीं। **तीर्थंकर-परमदेव आदि स्वयंबुद्ध हुए और कुछ बोधितबुद्ध हुए...** आहाहा! अनन्त ज्ञानी, अनन्त समकिती, अनन्त साधु हुए, बाहर में नग्नपना, अन्दर में विकल्प से रागरहितपना, वह साधुपना है। आहाहा! बाहर से नग्नपना, अन्दर राग से नग्नपना। वीतरागभाव से पुराण पुरुष मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। आहाहा!

स्वयंबुद्ध हुए और कुछ बोधितबुद्ध हुए... कोई स्वयं से समझे और कोई गुरुगम से समझे। गुरु निमित्त। **बोधितबुद्ध हुए वे—अप्रमत्त से लेकर...** आहाहा! देखा! छठवाँ, चौथा, पाँचवाँ वहाँ तो ज्ञान और श्रद्धामात्र है। सातवें गुणस्थान में स्थिरता है। आहाहा! मुनिपना लिया हो तो भी सातवाँ गुणस्थान आवे, वह चारित्र है। आहाहा! ऐसे महापुरुष अनन्त हो गये हैं। वे **अप्रमत्त से लेकर सयोगीभट्टारक...** केवलज्ञानी परमात्मा अप्रमत्त से लेकर परमात्मा हो गये। आहाहा! रामचन्द्रजी आदि महापुरुष यह क्रिया करके, निश्चय आत्मा की क्रिया करके... आहाहा! मोक्ष पधारे। संसार का अवतार पूर्ण करके मोक्ष में गये।

सयोगीभट्टारक तक के गुणस्थानों की पंक्ति में आरूढ होते हुए,... आहाहा! अनन्त महापुरुष स्वयंबुद्ध स्वयं से समझे और कोई बोधितबुद्ध गुरुगम से समझे, परन्तु मुक्ति स्वयं से स्वयं की हुई। आहाहा! वे सब पुरुष। **गुणस्थानों की पंक्ति में आरूढ होते हुए,...** सातवें, आठवें, नौवें, दसवें, बारहवें, तेरहवें—इन गुणस्थानों में **आरूढ होते हुए,...** आहाहा! अभी गुणस्थानों के नाम नहीं आते होंगे। गुणस्थान अर्थात् क्या होगा? अन्दर की गुण की निर्मल परिणति प्रगट होना, रागरहित वीतरागी निर्मल दशा प्रगट होने का नाम यहाँ गुणस्थान कहा जाता है। आहाहा! अब ऐसा करने जाना? या स्त्री-पुत्र को कहाँ डालना? स्त्री से विवाह किया है। दो, चार, पाँच, आठ, दस-दस लड़के हों। चार-छह लड़के, चार-छह लड़कियाँ हों, उन्हें कहाँ डालना? परन्तु वे तो पर हैं, वे कहाँ तेरे थे? आहाहा! तूने माना है कि मेरे हैं। वह तो मिथ्याभ्रम अज्ञान है। पर आत्मा और पर शरीर, वे तेरे आत्मा से पर भिन्न आत्मा, तेरे शरीर से भिन्न शरीर, उन्हें 'मेरा' माना, मेरे कुटुम्बी और मेरे घरवाले। ऐसा पूछे कि यह कौन है? कि यह हमारे घरवाले हैं। स्त्री ऐसा कहे कि हमारा घरवाला है, वह ऐसा कहे मेरी घरवाली है। घर कहाँ तेरा था? कौन सा घर था उसमें

घरवाली आयी ? घरवाला कहाँ से आया ? तेरा घर तो आत्मा आनन्द है। आहाहा! दुनिया से उल्टा है। आहाहा!

यह सभी अप्रमत्त गुणस्थान से लेकर... ऐसा लिया। देखो! चौथे-पाँचवें-छठवें को नहीं। ध्यान में लेना है न ? **अप्रमत्त से लेकर सयोगीभट्टारक**... अर्थात् केवलज्ञानी प्रभु। सयोगी-योगवाले, भट्टारक अर्थात् पूजनीय प्रभु। **गुणस्थानों की पंक्ति में आरूढ होते हुए,...** निर्मल धारा में आरूढ़ होते हुए। अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड नाथ, प्रभु! उसमें अन्दर आरूढ़ स्थिर होने पर। उसकी श्रेणी अप्रमत्त सातवाँ गुणस्थान, तेरहवाँ गुणस्थान। ऐसे अन्दर स्थिर होने पर... आहाहा! **आरूढ होते हुए, परमावश्यकरूप आत्माराधना के प्रसाद से...** खास-जरूर का-मनुष्यपना पाकर भव के अभाव करने का परम आवश्यक। परम आवश्यक अर्थात् परम जरूरी का। आहाहा! परम आवश्यक अर्थात् परम जरूरी का। परम जरूरी रूप आत्म-आराधना। आहाहा! भाषा भी कैसी है!

मनुष्यपना प्राप्त करके परम आवश्यक काम आत्म-आराधना है। कोई क्रियाकाण्ड करना, वह नहीं। ऐसा तो अनन्त बार किया है परन्तु भवभ्रमण घटा नहीं, भव का नाश नहीं हुआ। यह कौआ, कुत्ता, बाघ, सिंह, शूकर के अवतार (किये) और फिर वहाँ माँस खाये और फिर मरकर नरक में अवतार। नरक में जाए। ऐसे अनन्त भव किये। आहाहा! उस सब संसार का अभाव करके परमावश्यकरूप। परम आवश्यकरूप **आत्माराधना...** यहाँ तो आत्म आराधना कही है। कोई क्रिया करना या वह कुछ नहीं। आत्म-आराधना, वह क्रिया है। आहाहा! **परमावश्यकरूप...** परम आवश्यकवाला। और उससे मुक्ति हो, ऐसी क्रिया। ऐसे **आत्माराधना के प्रसाद से...** आत्माराधना के प्रसाद से। आहाहा! चैतन्य प्रभु अनन्त आनन्द और अनन्त वीतरागमूर्ति अन्दर आत्मा है। उस प्रभु के प्रसाद से... आहाहा! उसकी कृपा से। **केवली—सकलप्रत्यक्षज्ञानधारी—हुए।** आहाहा! परम आवश्यकरूप। परम अर्थात् आवश्यक खास काम है। खास काम अर्थात् खास जरूरी काम। खास जरूरी काम तो आत्म-आराधना है। आहाहा! अन्दर भगवान आत्मा अन्तर चमत्कार चैतन्य के आनन्द, ज्ञान, शान्ति और प्रभुता, ईश्वरता आदि अन्तर शक्तियों का भण्डार भरा है। ऐसा परम आवश्यक-जरूरी आत्म-आराधना के प्रसाद से। **आत्माराधना**

के प्रसाद से... व्यवहार क्रियाकाण्ड और व्यवहार रत्नत्रय करते-करते केवली हुए, ऐसा नहीं है। उसमें आया या नहीं? आहाहा! व्यवहार करो... व्यवहार करो... व्यवहार करो। सोनगढ़वाले व्यवहार का निषेध करते हैं - ऐसा कहते हैं। कह, तुझे कहना हो वह। वस्तु तो ऐसी है। वस्तु तो ऐसी है। आहाहा!

अन्तर में भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द परमात्मा की मूर्ति है। वह तो भगवान अन्दर है। तेरी नजर के आलस्य से दिखायी नहीं देता। उसकी आराधना से—भगवान परमात्मस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द, अनाकुल ज्ञान-शान्ति का कन्द, इसकी आराधना से। आहाहा! इस आराधना के प्रसाद से। **केवली—सकलप्रत्यक्षज्ञानधारी—हुए।** कोई व्यवहार से केवली हुए, ऐसा नहीं कहा। कहीं लिखा हो तो उसे सामने रखते हैं, परन्तु लिखा वह तो जानने के लिये (कथन है) यहाँ यह कहा और वहाँ वह कहा, उसमें विरुद्ध होगा? समयसार की जयसेनाचार्य की टीका में व्यवहार साधक और निश्चय साध्य कहा है। वह तो ज्ञान कराने के लिये कहा है परन्तु यह मानता है कि व्यवहार साधन करते-करते शुद्धनिश्चय होगा। आहाहा! यहाँ आवश्यकता किसे है? स्त्री, कुटुम्ब, धन्धा, व्यापार, खाना-पीना, सोना, निभना, परिवार को निभाना। यह करना या यह करना? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ऐसा कहते हैं कि मैं भी तीर्थंकर परम देवादि स्वयंबुद्ध हुए, वे सब इस प्रकार से हुए। नाम दिया है। **तीर्थंकर-परमदेव आदि स्वयंबुद्ध हुए और कुछ बोधितबुद्ध हुए वे—** भी इस रास्ते से हुए। आहा! अभी इसकी खबर नहीं होती। सुना न हो। अरे! ऐसा मनुष्यभव चला जाएगा, प्रभु। तेरा कहाँ अवतार होगा? तेरा तो कुछ नाश हो, ऐसा नहीं। तू तो नित्य वस्तु है। नित्य वस्तु है। यह (शरीरादि तो) नाशवान है, इसकी राख होगी। श्मशान की राख होगी। तेरी सत्ता, तेरा अस्तित्व कहाँ रहेगा? आहाहा! यहाँ से छूटकर कहाँ जाएगा? कुछ खबर नहीं होती कहाँ जाना है इसकी। आहाहा!

पशु जैसे अवतार। आहाहा! पशु क्यों कहते हैं? पश्यते पशु, बध्यते इति पशु। जिसमें संसार का बन्धन हो, वह पशु। ऐसा पाठ है। समयसार चौदह बोल में। चौदह बोल है। आहाहा! पशु को जैसे घास और चूरमा का विवेक नहीं है। घास और चूरमा-चूरमा। अर्थात् शुभ। इन दो चीज़ की जिसे भिन्नता नहीं है, ऐसे अज्ञानी को शरीर, राग और

भगवान आत्मा की भिन्नता का भान नहीं है, वह पशु है। आहाहा! वह चलता मुर्दा है, ऐसा मोक्षपाहुड़ में पाठ है। मोक्षपाहुड़ में पाठ है। चलता मुर्दा है। उस मर गये को उठाके ले जाते हैं। यह चलता मुर्दा है। आहाहा!

सकलप्रत्यक्षज्ञानधारी—यह आत्मआराधना है। परम आवश्यकरूप यह एक ही है। एक पंक्ति में तो पूरा मोक्षमार्ग बताया। **परमावश्यकरूप आत्माराधना के प्रसाद से...** उसके प्रसाद से। **केवली—सकलप्रत्यक्षज्ञानधारी—हुए।** किसी व्यवहार से हुए (-ऐसा नहीं)। महाव्रत पालन करे, शरीर से ब्रह्मचर्य पालन करे, छह परवी ब्रह्मचर्य पाले, छह परवी कन्दमूल न खाये, रात्रि में चतुर्विध आहार का त्याग करे। वह तो सब शुभभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : उससे तो प्रतिपक्ष कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो प्रतिपक्ष है। आहाहा! बालब्रह्मचारीपना पालन करे तो भी शुभभाव है। शरीर से क्रिया नहीं हुई। वह तो शरीर जड़ है, जड़ की क्रिया ऐसी हुई नहीं, उसमें मान लिया कि मैं धर्म करता हूँ।

धर्म तो आत्मा का आराधन, सेवन, अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द की प्रभु की शक्ति है। प्रभु की शक्ति से भरपूर है। स्वयं प्रभु है, परमेश्वर है। आहाहा! प्रभु नाम की उसमें शक्ति है। सैंतालीस शक्ति में। ऐसी अनन्त शक्ति प्रभु की शक्ति से भरपूर है। आहाहा! उसे छोड़कर राग की क्रिया से धर्म होता है, राग की क्रिया से आत्मा का आराधन होता है, यह मिथ्याभ्रम है, मिथ्यात्व है। आहाहा! ऐसा काम है। अन्तिम गाथा है न? अन्तिम में अन्तिम आवश्यक करना हो तो यह है। अन्तिम में अन्तिम करना हो तो यह है, बाकी सब शून्य है। आहाहा! पच्चीस-पचास लाख भले इकट्ठे किये हों और दो-पाँच, दस-दस लाख का दान किया हो, उसमें कोई धर्म नहीं है। दस लाख रुपये दे तो भी धर्म नहीं है। आहाहा! रुपये कहाँ इसके बाप के थे? रुपये तो जड़ हैं। रुपये -जड़ का स्वामी होना, वह तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। परचीज़ का स्वामी होना, (वह मूढ़ है)। आहाहा!

यहाँ तो राग का स्वामी होना, वह मिथ्यादृष्टि है। शुभराग, वह घोर संसार है। वीतरागमूर्ति प्रभु अन्दर अमृत का सागर-समुद्र प्रभु अन्दर है। यह शुभराग जहर है, वह

तो जहर है। घोर संसार है। आहाहा! उससे लाभ मानना, वह मिथ्यादृष्टिपना है, आत्मा का अनाराधकपना है, आत्मा का विराधकपना है। आहाहा! ऐसा सुनना कठिन पड़े। दुनिया के काम के कारण, धन्धे के कारण निवृत्त नहीं होता। उसमें यह सुनने को मिलता न हो।

यह प्रभु आत्मा चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा अपने स्वभाव में आराधन हो... आहाहा! पुण्य-पाप के विकल्प अर्थात् राग छोड़कर अपने स्वभाव का सेवन करे, उसे यहाँ धर्म-आत्मा का धर्म आराधन कहते हैं। आवश्यक तो यह है। आहाहा!

श्लोक-२७०

[अब इस निश्चय-परमावश्यक अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव दो श्लोक कहते हैं:]

(शार्दूलविक्रीडित)

स्वात्माराधनया पुराण-पुरुषाः सर्वे पुरा योगिनः,
प्रध्वस्ताखिलकर्मराक्षसगणा ये विष्णवो जिष्णवः।
तान्नित्यं प्रणमत्यनन्य-मनसा मुक्ति-स्पृहो निस्पृहः,
स स्यात् सर्वजनार्चिताङ्घ्रिकमलः पापाटवीपावकः ।।२७०।।

(वीरछन्द)

सकल पुराण-पुरुष योगी निज आतम के आराधन से।
कर्म राक्षसों का विनाश कर विष्णु और जयवन्त हुए॥
उन्हें मुक्तिकामी निस्पृह जो मन-अनन्य से नमन करें।
पापवनों को पावक वह उसके चरणाम्बुज जन पूजें॥२७०॥

[श्लोकार्थः] पहले जो सर्व पुराण पुरुष—योगी—निज आत्मा की आराधना से समस्त कर्मरूपी राक्षसों के समूह का नाश करके *विष्णु और जयवन्त हुए

* विष्णु=व्यापक। (केवली भगवान का ज्ञान सर्व को जानता है इसलिए उस अपेक्षा से उन्हें सर्व-व्यापक कहा जाता है।)

(अर्थात् सर्वव्यापी ज्ञानवाले जिन हुए), उन्हें जो मुक्ति की स्पृहावाला निःस्पृह जीव अनन्य मन से नित्य नमन करता है, वह जीव पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान है और उसके चरणकमल को सर्व जन पूजते हैं॥२७०॥

श्लोक - २७० पर प्रवचन

अब इस निश्चय-परमावश्यक अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव दो श्लोक कहते हैं:- दो श्लोक। वह टीका थी।

स्वात्माराधनया पुराण-पुरुषाः सर्वे पुरा योगिनः,
प्रध्वस्ताखिलकर्मराक्षसगणा ये विष्णवो जिष्णवः।
तान्नित्यं प्रणमत्यनन्य-मनसा मुक्ति-स्पृहो निस्पृहः,
स स्यात् सर्वजनार्चिताङ्घ्रिकमलः पापाटवीपावकः॥२७०॥

आहाहा! थोड़ा परन्तु सत्य होना चाहिए। बड़ी-बड़ी बातें करके ऐसा करो और ऐसा किया और जैनशाला बनायी। क्या कहलाता है वह? यह होनेवाला है न तुम्हारे? शिविर-शिविर। शिक्षण-शिविर लगाया। सिखलाया, एक हजार लोग आये थे। उसमें तुझे क्या हुआ? आहाहा! तूने क्या किया? वह सब तो राग है। वह सब संसार है। आहाहा! गजब बात है।

मुमुक्षु : शिविर में तो ज्ञान प्राप्त होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञान परलक्ष्यी धारणा। परलक्ष्यी धारणा। स्वलक्ष्यी ज्ञान-आराधना तो अलौकिक बात है। आहाहा! आत्मा जो अन्दर शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति परम-आनन्द का नाथ, उसकी प्राप्ति तो कोई अलौकिक चीज़ है। आहाहा! उसके बिना धर्म नहीं है। लाख यात्रा करे, लाख-करोड़ व्रत पालन करे... आहाहा! दया पाले, व्रत पाले, ब्रह्मचर्य पाले, वह सब राग है; धर्म नहीं। आहाहा!

धर्म तो, आत्मा आनन्दस्वरूप निर्विकल्प, राग के विकल्प से रहित (है), उसकी अन्दर आत्मा की आराधना, उसे भगवान धर्म कहते हैं। त्रिलोकनाथ परमात्मा तो उसे धर्म

कहते हैं। अज्ञानी अपनी स्वच्छन्दता से चाहे जो माने। स्वच्छन्दी होकर चाहे जो मानो। परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान प्ररूपणा है। बीस तीर्थंकर विराजमान हैं, लाखों केवली विराजमान हैं। आहाहा! महाविदेह में तीनों काल तीर्थंकर का विरह नहीं है। केवली का विरह नहीं है। आहाहा! वहाँ भी अनन्त बार गया, अनन्त बार जन्मा और अनन्त बार उस समवसरण में भी गया, परन्तु अन्तर आत्मा क्या चीज़ है, इसकी खबर नहीं। आहाहा! आत्मा के अतिरिक्त जितनी क्रिया (करे,)—भगवान की यात्रा, भगवान की पूजा, भगवान का दर्शन, वह सब क्रिया राग है। उसमें कोई धर्म-बर्म है नहीं। अशुभ से बचने को आता है, आवे। शुभराग, अशुभ से बचने को आता है, परन्तु है अधर्म। आहाहा!

मुमुक्षु : अधर्म किसलिए करना चाहिए? छोड़ देना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुभ से बचने को आता है। कमजोरी है न! कमजोरी है। अशुभ से-कुस्थान से-अस्थान से-विरुद्ध स्थान से बचने को शुभभाव बीच में आता है, परन्तु वह शुभभाव अधर्म है, धर्म नहीं। धर्म तो शुभराग से भिन्न चैतन्यस्वरूप भगवान अन्दर विराजता है, आनन्द की मूर्ति प्रभु वीतरागस्वभाव का पिण्ड आत्मा है, उसका अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! आहाहा! धर्म बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! लोग कुछ अपनी कल्पना से माने कि भगवान के दर्शन किये, शत्रुंजय की यात्रा की... वह क्या कहलाता है बड़ा? सम्मेदशिखर। सम्मेदशिखर की यात्रा की तो धर्म हुआ। बिलकुल धर्म नहीं है।

मुमुक्षु : ४९ बार यात्रा करे तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाख बार करे तो भी यात्रा (तो भी) नहीं।

छहढाला में आता है—'लाख बात की बात...' छहढाला में आता है—'लाख बात की बात निश्चय उर आणो, छोड़ी जगत द्वंद्व फंद निश्चय आतम ध्याओ।' आहाहा! छहढाला में आता है। है उसमें यह? लाख बात की बात, करोड़ बात की बात, अनन्त बात की बात... आहाहा! वीतराग का मार्ग, तीन लोक के नाथ तीर्थंकर का मार्ग (यह है कि) अन्दर—आत्मा दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के राग से भिन्न है; उसका आराधन, वह धर्म है, बाकी तो अधर्म है। आहाहा! यह शुभराग भी अधर्म है। आहाहा! भक्ति, पूजा और

यात्रा, यह सब शुभराग है। राग, वह अधर्म है। धर्म—रागरहित अन्तर चैतन्यमूर्ति प्रभु (का अनुभव होना, वह धर्म है)। आहाहा! भारी कठिन लगे। लोग मानते हैं, मानो धर्म हो जाएगा। शत्रुंजय की यात्रा करे, फिर साधु-बाधु हो, उसे आहार-पानी दे तो परित संसार हो गया। वह साधु ही कहाँ था अभी? साधु किसे कहना, इसकी तुझे खबर नहीं। साधु कहना किसे?

यहाँ तो आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति की श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव बिना जितना क्रियाकाण्ड है, वह सब शून्य है। सब बन्धन का कारण है। आहाहा! कोई लाख क्रियाकाण्ड (करे), करोड़-दो करोड़ रुपये भक्ति में और बड़े दान में खर्च करे वह राग है, धर्म नहीं। ऐसी तो स्पष्ट बात है, ढ़िंढोरा पीटकर बात है। यहाँ गुप्त बात नहीं है। आहाहा!

इसे कहाँ पड़ी है.. मैं कौन हूँ? अरे रे! मेरी सत्ता कहाँ रहेगी? मैं तो हूँ। मेरी सत्ता तो है। इस सत्ता का नाश होगा। मेरी सत्ता का नाश हो, ऐसा नहीं है। इसका (शरीर का) नाश भी नहीं होगा। यह तो पर्याय पलटे, उसका नाम नाश कहा जाता है। परमाणु की पर्याय पलटे, उसे नाश-व्यय कहा जाता है। इसी प्रकार आत्मा भी देह छोड़कर कहीं जाएगा। अनन्त काल रहनेवाला है। भविष्य में तो अनन्त काल रहनेवाला है। कहाँ रहेगा, इसकी इसे पड़ी है कुछ? आहाहा! यहाँ से देह छोड़कर भविष्य में अनन्त काल रहेगा। इस देह का तो नाश होनेवाला है, श्मशान में राख होनेवाली है। यह देह छोड़कर आत्मा अनादि रहेगा। कहाँ रहेगा, इसका भान भी कहाँ है? आहाहा! मूढ़ की तरह जिन्दगी बितायी है। आहाहा! यहाँ तो यह कहते हैं। अब श्लोक आया न?

श्लोकार्थ : पहले जो सर्व पुराण पुरुष—योगी—आहाहा! पुराने पुरुष जो मोक्षगामी हो गये, अनन्त तीर्थंकर, केवली, बलदेव, रामचन्द्रजी आदि, वे **निज आत्मा की आराधना से...** आहाहा! निज आत्मा। देखो! निज आत्मा कहा है। पर आत्मा नहीं, परमात्मा नहीं, तीर्थंकर भी नहीं, उनकी मूर्ति भी नहीं और उनका समवसरण भी नहीं। आहाहा! भगवान का साक्षात् समवसरण और पूजा, भक्ति, वन्दन वह शुभभाव है, पुण्य है, संसार है। आहाहा!

पहले जो सर्व पुराण पुरुष—महा पुराने अनादि पुरुष हो गये हैं। धर्म करके, आराधना करके मोक्ष पधारे। वे **योगी—निज आत्मा की आराधना से...** आहाहा! पर

आत्मा की नहीं। आहाहा! भगवान की आराधना से नहीं। भगवान भी परद्रव्य है। निज आत्मा अपना जो स्वरूप, उसकी **आराधना से समस्त कर्मरूपी राक्षसों के समूह का नाश करके...** है? **निज आत्मा की आराधना से समस्त कर्मरूपी राक्षसों के...** आहाहा! पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव, वह कर्मरूपी राक्षस है। आहाहा! तुझे खा जाता है। अरे रे! यह बात सुनने को मिलती नहीं। सेठियों को अधिक मक्खन चोपड़ते हैं (लगाते हैं)। पैसा खर्च करो, ऐसा करो, यह करो। आहाहा!

निज आत्मा की आराधना से समस्त कर्मरूपी राक्षसों के समूह का नाश करके... आहाहा! **विष्णु...** हुए। **व्यापक।** पूरे लोकालोक का ज्ञान हो गया। वह व्यापक। अन्तर आराधना करके, चैतन्य की अन्तर आराधना करके व्यापक हो गये। तीन काल-तीन लोक का ज्ञान हो गया, वह व्यापक। व्यापक अर्थात् उन्हें सब ज्ञान पसर गया। लोकालोक का ज्ञान हो गया, परन्तु उस क्रिया से-अन्तर आत्मा की आराधना की क्रिया से। बाहर की क्रिया व्रत और भक्ति और यात्रा-बात्रा से कुछ हो, ऐसा नहीं है। वह सब राग बन्धन का कारण है। आहाहा!

विष्णु=(केवली भगवान का ज्ञान सर्व को जानता है, इसलिए उस अपेक्षा से उन्हें सर्व-व्यापक कहा जाता है।) आत्मा सर्व-व्यापक नहीं होता। सर्व-व्यापक ऐसे आत्मा लोकप्रमाण नहीं हो जाता। आत्मा यहाँ रहकर तीन काल और तीन लोक का ज्ञान होता है, उसे यहाँ उसका व्यापक कहा जाता है। आहाहा! अब हम धर्म नहीं कर सकते परन्तु कुछ तो होगा, ऐसा कितने ही कहते हैं। कुछ तो हमारा होगा, होगा तुम्हारा भटकने का। धर्म के बिना चाहे जो शुभ क्रियाकाण्ड करो, वह संसार है। कठिन बात है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ यही कहते हैं न? सर्व-व्यापक हुआ अर्थात्? अपना आराधन करके सर्व-व्यापक हुआ अर्थात्? तीन काल-तीन लोक को जाननेवाला हुआ। वह व्यापक। ऐसे लोक में पसर गया, ऐसा नहीं। ज्ञान हुआ। विष्णु अर्थात् जयवन्त हुआ। **विष्णु और जयवन्त हुए (अर्थात् सर्व व्यापी ज्ञानवाले जिन हुए),...** सर्व को जाननेवाले जिन हुए। आहाहा! 'घट-घट अन्तर जिन बसे...' तू तो जिनस्वरूपी ही है, प्रभु! 'घट-घट अन्तर जिन बसे, अरु घट-घट अन्तर जैन; मत-मदिरा के पान सों मतवाला समझे न।' अपने अभिप्राय के, आग्रह के मतवाले, मदिरा पीये हुए, अपने अभिप्राय की मदिरा पीये हुए

सत्य को नहीं समझते। सत्य बात आवे तो कहे, ऐई! यह तो निश्चय है, यह तो निश्चय की बात है। आहाहा! बापू! निश्चय अर्थात् सत्य, व्यवहार अर्थात् झूठ। आहाहा! कठिन बात है। सुनना ही मुश्किल पड़े ऐसा है।

यहाँ कहते हैं **विष्णु और जयवन्त हुए...** आत्मा का निर्मल निर्विकल्प आराधन किया। रागरहित आत्मा की श्रद्धा, रागरहित ज्ञान और रागरहित चारित्रस्वरूप, इससे विष्णु हुए। **विष्णु और जयवन्त हुए...** तीन काल और तीन लोक का ज्ञान होकर जयवन्त हुए। आहाहा! **उन्हें जो मुक्ति की स्पृहावाला निःस्पृह जीव...** मुक्ति की स्पृहावाला निःस्पृह जीव। **अनन्य मन से नित्य नमन करता है,...** ऐसे परमात्मा को मुक्ति की स्पृहावाला। व्यवहार लिया है। निःस्पृह जीव (अर्थात्) कोई आशा बिना अनन्य मन से नित्य नमन करता है। सिद्धस्वरूपी नमन करता है। आहाहा! सिद्ध में रमण करता है, सिद्धस्वरूप अपना है, उसे नमन करता है।

वह जीव पापरूपी अटवी को... आहाहा! पापरूपी वन। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम पाप है। पुण्य भी पाप है। 'पाप पाप तो सब कहे परन्तु अनुभवी जीव तो पुण्य को भी पाप कहे।' योगसार में आता है। 'पाप पाप तो सब कहे परन्तु अनुभवी जीव पुण्य को पाप कहे।' पुण्य और पाप दोनों बन्धन है। आहाहा! बन्धन हैं, उससे रहित होकर.. आहाहा। **जीव पापरूपी अटवी को जलाने में...** पाप में शुभ और अशुभ दोनों लेना। आहाहा! **पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान है...** आहाहा! अन्तर भगवान आनन्दस्वरूप की अन्दर एकाग्रता, वह पुण्य और पापरूपी अटवी अर्थात् वन को जलाने में अग्नि समान है। आहाहा! इतनी उसमें ताकत है।

और उसके चरणकमल को... वे धर्मात्मा जो पूर्ण हुए, ऐसे जीव के **चरणकमल को सर्व जन पूजते हैं।** सर्व जीव उन्हें पूजते हैं। स्वयं पूजनीय दशा को तो प्राप्त हुए परन्तु दूसरे जीव भी उन्हें पूजते हैं। आहाहा! पाप और पुण्य करनेवाला तो स्वयं दुःखी और दूसरे भी उसे दुःखी देखते हैं। यह धर्म, पुण्य और पापरहित अपने स्वरूप का ध्यान करनेवाला, मोक्ष प्राप्त करनेवाला पवित्र है और उसे दुनिया भी पूजती है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)